॥ श्रीः ॥

ॐ भूमिका ॐ

द्वैताऽद्वैतप्रकाश यह श्रुति अरु युक्ति सहाय ।
जगत ब्रह्मकी एकता जामें प्रगट लखाय ॥ १ ॥

उत्तर कृति अद्वैत की द्वैतवादि कृत तर्क ।
उभय अभेद रु भेदमें करते तर्क वितर्क ॥ २ ॥

निज निज पक्षहिं साधते युक्ति रु श्रुति बलपाय ।
खण्डन मण्डन करत जहं उभै स्वबुद्धि सहाय ॥ ३ ॥

निज अरु परहित जानिकैं भाषा पद्य बनाइ ।
सदाचार शुभ रत्नमयमाला हू दरसाइ ॥ ४ ॥

यहु जिनके निज हृदयपे लसै सुकृत मणिमाल ।
वे विन भूषण हू लसैं बुधजनसभा विशाल ॥ ५ ॥

प्रश्नोत्तर शुभरत्न मय यहु माला सुउदोत ।
जाके कंठस्थित किये अति ही शोभा होत ॥ ६ ॥

कौन न सोहत कंठ धरि याको नर सरताज ।
यहँके अरु परलोक के साधन चहत स्वकाज ॥ ७ ॥

प्रश्नोत्तरमणिमाल यह जाकों विजय बनाइ ।
जो याकी गति अनुसरिह मनुजजन्म सफलाइ ॥ ८ ॥

※ श्रीः ※

॥ दोहा ॥

सब जग जातें जगमगत सूर्यादिक विलमाँहि ॥
सत चित आनंद एक सो ब्रह्म जयति जगमाँहि ॥ १ ॥
देखत सुनत रु सूंघता करता जो कुछ जीव ।
जानत है जातें वही जयति ब्रह्म जगसींव ॥ २ ॥

* श्रीः *

द्वैताऽद्वैतप्रकाश

प्र०—ब्रह्मज्ञान प्राप्तिके पूर्व जीवात्मा ब्रह्मरूप है वा अन्य ।

उ०—अन्य है ।

प्र०—यदि अन्य है तो सर्वं ब्रह्मैव यह कथन असङ्गत होताहै ।

उ०—अच्छा तो ब्रह्मरूप मानो ।

प्र०—जो ब्रह्म माना तो कर्मबन्धनमें कौन फँस रहा है और अनेक दुर्गतियां कौन भोग रहा है ।

उ०—शरीराभिमानी आत्मा ।

प्र०—क्या शरीराभिमानी आत्मा ब्रह्म नहीं है ।

उ०—हां वह ब्रह्म नहीं है ।

प्र०—तो वह क्या है ।

उ०—वह जीवात्मा है ।

प्र०—अच्छा तो फिर भी सर्वं ब्रह्मैव यह कथन तो असङ्गत ही हुआ ।

उ०—ब्रह्मज्ञ पुरुष चेतन ब्रह्म के अतिरिक्त जीवादि सब पदार्थोंको कल्पित वा मिथ्या समझते हैं इससे उनकी दृष्टिमें शरीरादिक पदार्थ शशशृङ्गायमाण ही हैं अर्थात् हैं ही नहीं। उनको छोड़कर जो शेष चेतन आत्मभाग है

वही उनकी दृष्टिमें चढ़ता है सो ब्रह्म है और जो शरीरादिकोंको अपना वा आप समझते हैं और अपना वस्तु भूत स्वरूप जो अकर्त्ता अभोक्ता निर्विकार अविनाशी शुद्ध बुद्ध व मुक्तरूप है उसको नहीं जानते वे संसारी महाप्रलय पर्यन्त जन्म मरण के चक्रसे अलग नहीं होसक्ते हैं व्यवहारदशामें उनका ही जीवरूप करिकै व्यवहार माना है और परमार्थदशामें तो पूर्वोक्त दृष्टिसे वे भी ब्रह्मही हैं इस कारण परमार्थदृष्टिसे सर्वं ब्रह्मैव यह कथन असङ्गत नहीं । सर्वं ब्रह्मैव इसका तात्पर्य यही है कि जो जो व्यवहारदशामें सत्यसा प्रतीत होता है वह २ सबही तत्तद्रूपसें मिथ्या है और वस्तुतः ब्रह्मरूप है इसी से शङ्कराचार्य लिखते हैं कि

"रज्जुसर्पवदात्मानं जीवंज्ञात्वा भयं वहेत् ।
नाहं जीवः परात्मेतिज्ञानञ्चेन्निर्भयोभवेत् ॥१॥"

अर्थात् यहजीव, रस्सीको सर्पकी तरह भ्रान्तिसे अपनेको जीव जानकर भय पाता है और जब वह यह सत्य समझ जाता है कि मैं जीव नहीं किन्तु परमात्मा हूं तब निर्भय हो जाता है । इससे तत्त्वदर्शियोंकी दृष्टिमें तो ब्रह्मव्यतिरिक्त कोई पदार्थ है ही नहीं ।

प्र०—अविद्या कोई पदार्थ है वा नहीं ।

उ०—अविद्या असल में कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि एक ब्रह्म के सिवाय दूसरा कोई पदार्थ वेद व शास्त्रोंमें सत्य नहीं माना है और प्रत्यक्षमें यह जो सब दिखाई

देता है सो अनहुआ ही प्रतीत होता है । असलमें कुछ है नहीं जैसे रस्सी में सर्प अनहुआ ही दिखाई देता है असल में वह है नहीं और दर्पणमें प्रतिबिम्ब भी मिथ्या ही दीखता है और बनेतीका चक्र असलमें एकाकार नहीं है परन्तु भ्रमण समय में एकाकारही प्रतीत होता है इसीलिये यजुर्वेदमें यह लिखा है कि—

पुरुष एवेद ँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥

अर्थात् यह जो कुछ व्यवहारदशामें हुआ है और है और होनेवाला पदार्थ प्रतीत होता है सो सब पुरुष ही है जो मोक्ष का देनेवाला है और जो इस अन्नमय शरीरसे ढका हुआ है । "सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय" यह भी श्रुति सृष्टि के आदिकालकी है इसमें लिखा है कि उस ब्रह्मनें इच्छा की कि "मैं एक हूं और अब बहु प्रपंचरूप करिकैं होजावूं" तो इस से भी जगत् ब्रह्मरूप ही पाया गया इसलिये उसके सिवाय दूसरा कोई पदार्थ सत्य नहीं है ।

प्र०—अनादि ब्रह्म ही हैं वा अन्य भी, ।

उ०—ब्रह्म ही एक अनादि नित्य पदार्थ है दूसरा कोई नहीं । अतएव (सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्) ये श्रुतियां सङ्गत होती हैं अर्थ इनका यह है कि यह सब जगत् पहले सद्रूप एक अद्वितीय पर-

मात्मा ही था और "नेह नानास्ति किंचन" यह और एक श्रुति कहती है कि यहां कोई नाना पदार्थ नहीं है अर्थात् सब ब्रह्मरूप ही हैं।

प्र०—अच्छा तो अविद्याको वेदादिशास्त्रोंमें अनादि क्यों माना है जैसा कि ऋग्वेदमें लिखा है कि "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व-जाते तयोरेकः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्न-न्यो अभिचाकशीति ॥ १ ॥" और यह श्वेता-श्वतरोपनिषद् है "अजामेकां लोहितशुक्ल कृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगाम-जोऽन्यः।" इनका अर्थ यह है कि जीव व ईश्वर ये दो पक्षी सहचारी व समानधर्म वाले अनादि नित्य हैं और वैसा ही प्रवाहरूपसे अनादि संसाररूपी वृक्ष है उसमें बैठे हुये हैं उनमें से एक जो जीवात्मा है सो विषयरूपी स्वादुफलों का भोग करताहै और दूसरा परमात्मा अभोक्ता होकर प्रकाश कररहा है ॥ १ ॥ और अजामेकां लोहित इत्यादि श्रुति का यह अर्थ है कि अनादि एक जो सत्व रज व तमरूपा प्रकृति है वही अपनी सी विविध प्रजाको रचती है और अनादि नित्य एक जीवात्मा उस अनादि प्रकृतिका भोग करता हुआ उसीमें रम रहा है और परमात्मा इसके भोगसे अलग है। तो देखो इन वचनोंसे जीव ईश्वर व प्रकृति

ये तीन पदार्थ अनादि सिद्ध होते हैं । और गीतामें भी लिखा है कि "प्रकृतिं पुरुषंचैव विद्ध्यनादी उभावपि" अर्थात् प्रकृति व पुरुष ये दो पदार्थ अनादि जानों ।

उ०—ये श्रुतियां सृष्टिके आदिकी दशा नहीं प्रकट करती हैं किन्तु पीछेकी दशा बतारही हैं जब संसार होगया उस समय जीव, ईश्वर व संसार ये तीनों वर्त्तमान थे अतः उनकी उस समय की जो वर्त्तमान दशा है उसीका इनमें वर्णन है सृष्टिसे पहिले एक केवल ब्रह्म हीथा और ये सब ब्रह्ममें लीन थे इससे ब्रह्मरूपसे ही थे वेदमें इनको ब्रह्मसे पृथक् नहीं मानाहै किन्तु इनका ब्रह्मरूपसे ही व्यवहार कियाहै इसी कारण पूर्वोक्त सदेव सौम्येद-मित्यादि श्रुतियां सृष्टिके आदिकालमें ब्रह्मव्यतिरिक्त अन्यपदार्थका अभाव बतारही हैं यूं ये तीनों कल्पा-वस्थायी होनेसे अनादि तो हैं परन्तु प्रकृति अनादि नित्य नहीं ।

प्र०—जब प्रकृति व जीवादिक अनादि नित्य हैं तो द्वैताप-त्तिरूप दोष अवश्य होगा ।

उ०—वेद व शास्त्रोंके प्रमाणोंसे यह सिद्ध होचुका कि सृष्टिके आदिकालमें एक केवल ब्रह्म ही था और कुछ नहीं था पीछे जब सृष्टि भई तब वह ब्रह्म ही आप एकरू-पसे अनेक रूप हुआ अब इस दशामें एक वा अनेक जो कुछ भी है सो उससे अन्य नहीं और जो है सो

वही है तो अब द्वैत क्योंकर होसकता है और प्रकृति सद्रूप नहीं क्योंकि अविद्या विद्याका अभावरूपा है उसके अनादि रहते भी दो पदार्थ नहीं माने जासक्तेहैं जैसे जहां घट है और पटादिकोंका अभाव है यों दो हैं तोभी वहां कोई दो पदार्थ नहीं मानतेहैं यह सर्वानुभवसिद्ध है इसी भांति ब्रह्म तो सत् पदार्थ है और अविद्या असत् है तो उसके अनादि रहते भी दो पदार्थ मानकर द्वैतापत्ति नहीं समझी जासक्ती है इससे भी द्वैतापत्ति रूप दोष नहीं होसक्ता है ।

प्र०—जीवावस्थामें नानाप्रकारके दुःख व सुखादि विकार यदि जीवको होतेहैं तो जीव तो असलमें कोई पदार्थ ही नहीं रहा फिर दुःख आदि उसको कैसे मानतेहो जो सब ही ब्रह्म है तो वह भी ब्रह्मरूप हुआ फिर ब्रह्मको ही दुःखादिभोग माना जायगा क्या ।

उ०—सर्वैकयतारूप परमार्थदशामें तो ये शङ्का ही नहीं बनती क्योंकि सुख दुःख विकार आदि भी तो पृथक् रूपसे नहीं माने जातेहैं फिर कौनसे दुःखादिक विकार और कौन उनका भोक्ता बनें इसलिये ब्रह्म आनन्दमय क्योंकर दुःखी व विकारी होसकताहै और व्यवहारमें भोक्ता जीव व निर्विकार ब्रह्म है ।

प्र०—जगत्के मिथ्या माननेमें कोई युक्तिरूप भी प्रमाण है अथवा केवल वचन ही ।

उ०—इसमें युक्तिरूप प्रमाण यह है कि जैसे घट पदार्थ

मृत्तिकासे अन्य नहीं है किन्तु मृत्तिकारूप ही है यदि अन्य होता तो बिना मृत्तिकाके भी मृद्घट न्यारा मिलता इसी प्रकार जगत् यदि ब्रह्मसे भिन्न होकर सत्य होता तो ब्रह्मके बिना न्यारा भी मिलता सो नहीं इस हेतु नाम रूपात्मक जो जगत् है सो सर्वथा युक्ति व वचन रूप प्रमाणद्वारा मिथ्या सिद्ध है इस में कोई सन्देह नहीं ।

प्र०—अच्छा तो अब यह शङ्का होतीहै कि जैसे घट मिट्टीका परिणाम है वैसे ही जगत् ब्रह्मका परिणाम माना जायगा तो ब्रह्म विकारी होगा और जगत् जो जड़ात्मक है उसका चेतन ब्रह्म क्योंकर उपादान होसकता है चेतन ब्रह्मसे जडरूप जगत् नहीं बनसक्ता जैसे लोकमें गोधूमादिसे गोधूमादि ही होते देखे जातेहैं यवादिक नहीं फिर चेतन जडका उपादान कैसे होगा ।

उ०—देखोजी संसारमें कोई जडपदार्थ है ही नहीं सब चेतन ही चेतन हैं ।

प्र०—तो फिर पाषाणमें ज्ञानोत्पत्ति क्यों नहीं होती ।

उ०—भाई परमार्थदशामें कोई पाषाणादि भिन्नपदार्थ नहीं जब इस दशामें पाषाणत्वादि रूप करिकैं पाषाणादिको भिन्न मानें तब यह शङ्का हो अन्यथा कभी नहीं केवल व्यवहारदशामें वह पाषाणादि नामसे माना गयाहै वास्तवमें तो वह सब ब्रह्म ही है उनमें पाषाणत्वादि कल्पित हैं वास्तविक नहीं । और व्यवहारदशामें यह

उत्तर है कि जहां अन्तःकरण हो वहां ज्ञानादि होतेहैं पत्थरमें अन्तःकरण नहीं इससे ज्ञानादि भी नहीं ।

प्र०—अच्छा तो अन्तःकरण जड है वा चेतन यदि अन्तःकरण जड है तो सब चेतन ही चेतन है यह कथन असङ्गत है और जो अन्तःकरण भी चेतन है तो उस पाषाणरूपी चेतनसे अन्य है वा तद्रूप ही जो अन्य है तो अनेक चेतन होनेसे ब्रह्म अनेक होंगे और जो एक ही है तो फिर पाषाणादिमें ज्ञानादि क्यों नहीं पैदा होतेहैं इससे संसारमें जड़ व चेतन रूपसे दो पदार्थ मानों ।

उ०—व्यवहारदशामें जड़ व चेतनके भेदकी कल्पना है इस पक्षमें पाषाणादिमें चेतनशक्ति अनुद्भूत है जैसे काष्ठादिकोंमें अग्नि, कारणान्तरके सन्निधान होतेही प्रगट होतीहै अन्यथा नहीं इसी प्रकार अन्तःकरणके होते ही ज्ञानादि उत्पन्न होतेहैं अन्यथा नहीं सो कारणरूप अन्तःकरण व्यवहारदशामें कल्पित किया गया है वह पाषाणमें नहीं इससे पाषाणादिमें ज्ञानोत्पत्ति नहीं होती-है और अभेदपक्षमें तो न कोई प्रश्न है वा न उसका कोई उत्तर । देखो गोमय जिसको जड़ मानते हो उससे चेतन कीट कैसे पैदा होतेहैं क्योंकि जड़से चेतनकी उत्पत्ति लोकविरुद्ध है इससे यही पाया जाताहै कि गोमयादिक कोई असलमें जड़ पदार्थ नहीं किन्तु चेतन ही हैं ।

प्र०—अच्छा जो ये चेतन हैं तो स्वतः चलनात्मक शक्ति इनमें क्यों नहीं, जैसे कीटादिकोंमें प्रत्यक्ष है।

उ०—जो स्वतः चलते फिरते हैं वेही चेतन माने जाते हैं।

प्र०—तो पवनादि भी स्वतः चलते फिरते हैं ये भी चेतन क्यों नहीं।

उ०—इनमें ज्ञानशक्ति उद्भूत नहीं, जो चलता फिरता खाता पीता सुनता समझता है वही चेतन है और नहीं। इससे पवनादि चेतन नहीं हो सकते। जो कदाचित् कहो कि ऐसा लक्षण माना तो फिर पत्थर चेतन कैसे होसकता है और जो पत्थर चेतन न हुआ तो चेतनमय सर्व जगत् है यह कथन सङ्गत न रहा यदि यह कथन असङ्गत हुआ तो ब्रह्म जगत् का उपादान न रहा तो सर्वं ब्रह्मैव यह सिद्धान्त विरुद्ध हुआ।

उ०—ये सब व्य० द० में जड़ और वास्तवमें चे० ही हैं अरे भाई सुनो अभेद ही वेदोंका सिद्धान्त पक्ष है। क्योंकि पुरुष एवेदं सर्वमित्यादि पूर्वोक्त यजुर्वेद और स एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि (यह छां० उ०) है इनमें लिखाहै कि यह सब जगत् ब्रह्मरूप है और जीव को भी ब्रह्मही मानाहै इससे सब जगत् के ब्रह्म होनेमें कोई सन्देह नहीं। अजी एक जगह क्या; वेद तो पद पद में कहता चला जाताहै कि जगत् मिथ्या है और भी देखो अहं ब्रह्मास्मि यह यजुः और अयमा-

त्मा ब्रह्म यह अथर्व और तत् त्वमसि यह साम और प्रज्ञानं ब्रह्म यह ऋग्वेदका वचन है इनका अर्थ स्पष्ट है इनसे भी जीव व ब्रह्मका ऐक्य ही आता है और देखो तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्वि-स्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपास्तथाक्षरा द्विविधाः सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति। यह माण्डूक्योपनिषद्का वचन है । अर्थ—सो यह सत्य है, जैसे प्रज्वलित अग्निसे हजारों तँणगारे पैदा होते हैं सदृश तैसे परमात्मासे हे सौम्य नानाप्रकारके पदार्थ पैदा होते हैं और उसीमें लीन होजाते हैं। इससे अग्नि व तँणगारों का दृष्टान्त देकर ब्रह्म वा जगत्के पदार्थोंका उपादानोपादेय भाव बताया है यातें जगत् ब्रह्मरूप है और भी देखो कहां तक लिखें वेदादिके असङ्ख्य प्रमाण हैं । सर्वं खल्विदं ब्रह्म यह श्रुति है और गीता अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा (अ० ७) और सदसच्चाहमर्जुन (अ० ९) और मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय यह (अ० ७) और बृहदारण्य० अथोदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति, और यह कठोप० मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति और यह श्रुति है स एतमेव मूर्द्धसीमानंविदार्यतद्द्वाराप्रापद्यत । इत्यादि सब

वाक्यों का तात्पर्य जीव व जगत् को ब्रह्मरूप बतलाने में ही है। अब कहो ब्रह्म जगत् का उपादान कैसे न होवै और देखो गीता (अ० १५ । श्लो० १) में लिखा है कि उर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् । छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।

अर्थ—इस जगत् का सब से ऊर्ध्व अर्थात् उत्तम परमात्मा तो मूल है और अधःशाखम् अर्थात् ब्रह्मादिक इसकी शाखा हैं और यह स्वयं नश्वर है और प्रवाहरूपसे अनादि है। इसका उपादान ब्रह्म है इसकी उपपत्ति यों है कि परमात्मा से प्रकृति और प्रकृति से यह सब जगत् उत्पन्न हुआ । क्योंकि प्रलयकाल में प्रकृतिका लय उसीमें होताहै और सृष्टिकालमें उसीसे वह होती है । ऐसे प्रकृति जगत्की उपादान कारण हुई। इससे वह भी जगत्का उपादान है। सारांश इसका यही है कि व्यवहारदशामें प्रकृति व पुरुष ये दो अनादि मानें हैं और परमार्थमें ब्रह्म एक ही अनादि है। जब दो मानें उस पक्षमें जगत्का उपादान प्रकृति है सो परिणामवती है इससे प्रकृति जगत्का परिणामी उपादान है और ब्रह्म विवर्त्ती है । जैसे दधिका परिणामी उपादान दुग्ध है और घटका विवर्त्ती उपादान मृत्तिका है, ऐसे ही यहां भी जानलो उपादानोपादेयभाव भेदपक्षमें होसक्ता है अभेदमें नहीं इसलिये ये सब विकार प्रकृति कृतहै ब्रह्मकृत नहीं इससे जगतमें सर्वज्ञत्वादि गुण नहीं हैं इसीसे

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा—
इसकी व्याख्या में भाष्यकार शङ्कराचार्यजीनें यह लिखा है कि जब मेरी प्रकृति जगत् का उपादान है तो मैं अवश्य ही जगत् का उपादान हुआ। यह श्रीकृष्ण कहते हैं। इसीकारण प्रकृति सर्वादि होनेसे अनादि मानी है।

प्र०—अच्छा तो फिर जहां जहां द्वैतका प्रतिपादन है क्या वह मिथ्या ही है जैसा कि द्वा सुपर्णा इत्यादि और "य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्"॥ १ ॥ और आत्मनोन्तरोयमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥ २ ॥ यह बृहदा० में मैत्रेयीके प्रति याज्ञवल्क्य कहतेहैं कि हे मैत्रेयि जो परमेश्वर जीवात्मामें वर्त्तमान और जीवात्मासे भिन्न है उसको यह मूढ जीव नहीं जानताहै कि मैं जीवात्मा ही इसका शरीर अर्थात् निवासस्थान हूं ॥ १ ॥ और जीवसे भिन्न यह ईश्वर जो पापपुण्यका साक्षी होताहै सो ही तुझ जीवात्मा में वर्त्तमान है और नित्य है ॥ २ ॥ और (गीता अ० ७) में मयि सर्वमिदं प्रोतमित्यादि और (अ० ६) में मया ततमिदमित्यादि—और (अ० १८) द्वाविमौ पुरुषावित्यादि— ई- ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे इत्यादि और (अ० १५ में) उत्तमः पुरुषस्त्वन्य इत्यादि लिखा है।

उ०—देखो, वेदादिशास्त्रों में कहीं तो अद्वैत का ही वर्णन है और कहीं द्वैतका ही, इसका समाधान यह है कि जहां अद्वैत ही में श्रुतियां झुकी हैं वहां तो उपाधिको सर्वथा मिथ्या समझकर सब जगत्‌को एक ब्रह्मरूप ही माना है और जहां द्वैत ही कह रही हैं वहां उपाधिको लेकर द्वैत बतलाया है परन्तु उपाधिके मिथ्या होनेसे अद्वैतपक्ष ही वास्तविक है द्वैत नहीं, क्योंकि अविद्यारूप उपाधिके नष्ट होनेके पश्चात् ब्रह्मके सिवाय कोई जीव पदार्थ पृथक् नहीं रहता है। ब्रह्म की विद्या और अविद्या ये दो शक्तियां हैं परन्तु ये दोनों ही ब्रह्मरूपा हैं, अविद्या उससे भिन्न कोई वस्तु नहीं है कि जिसके नाश से ब्रह्म का भी नाश समझा जावे यह मलिनसत्वप्रधाना है और माया शुद्धसत्वप्रधाना है। इन दोनोंमें आपसमें इतना ही भेद है। जैसे छाया वा अन्धकार ये देखनेमें तो सच्चेसे दिखाई देतेहैं परन्तु असल में कुछ भी नहीं, एक केवल तेज का अभावमात्र ही हैं, ऐसी ही भ्रमरूपा अविद्या और माया है, मायाका लक्षण यह है कि जो विना हुए ही दीखने लगे और ज्ञानके पश्चात् न प्रतीत होवै वही माया है, जैसे प्रतिविम्ब वा अन्धकार—सो ही भा०में लिखाहै कि **ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथा तमः॥ १॥** अत्र श्रुतियों में परस्पर कोई विरोध नहीं, अन्यथा "मायाऽविद्या च स्वयमेव भवति"

१—जो प्रकृति को ब्रह्म की शक्ति न मानों तो

यह श्रुति असङ्गत होगी, इसका अर्थ यह है कि ब्रह्म आप स्वयं ही माया या अविद्या रूप होता है–यहां पर स्वयं शब्दसे पञ्चदशीमें शुद्ध ब्रह्म लिया है–और नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। इसकी व्याख्या में श्रीधरस्वामी नें योगमाया शब्दका यह अर्थ किया है कि योगो युक्तिर्मदीयः कोऽपि अचिन्त्यप्रज्ञाविलास एव माया। अर्थात् योग कहिये युक्ति सो मेरा अचिन्त्यप्रज्ञाका विलास है वह ही माया है। इससे साफ २ पाया जाताहै कि परमात्माका इस प्रकार का जो एक बुद्धि का खेल है वह ही माया है। वह किसीके विचार में नहीं आता है। इससे ब्रह्मरूपा होनेमें कोई शङ्का नहीं। इसीसे भेद व अभेदके अविरुद्ध होनेसे गीता में लिखा है (अ० १३) इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥ १॥

अर्थ—यहां क्षेत्र शब्द करिकें यह शरीर लिया है और क्षेत्रज्ञ करिकें इस शरीरका अभिमानी जो अहं मम करता है कृषिवलकी तरह इसके फल का भोक्ता है वह जीवात्मा लिया गया है फिर इसीको श्रीकृष्णजीने अपना रूप बतायाहै कि क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत। जो क्षेत्रज्ञ जीव है सो ही मैं हूं तो इसका तात्पर्य टीकाकारने यों लगाया है कि तत्त्वमसि

इत्यादि श्रुतियोंके अभिप्रायसे चैतन्यमात्र करिकैं जीवको आप रूप माना है सो ठीक ही है जैसे घट मृत्तिकारूप करिकैं मृत्तिकासे सर्वथा अभिन्न है और घटरूप करिकैं भिन्न भी है क्योंकि जो कार्य घटसे होताहै वह मृत्तिकासे नहीं होताहै सो ही गीतामें लिखाहै कि क्षेत्रज्ञं

चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ १ ॥

अर्थ—श्रीकृष्ण भगवान् कहतेहैं कि हे अर्जुन जगत्के जीवोंके जितने शरीर हैं उन सबमें क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीव जो है वह मैं हूं, तू क्षेत्रज्ञ मुझे जान । और क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इनका जो यथार्थ रूप से ज्ञान है उसीको मैं ज्ञान मानताहूं ॥ १ ॥ इससे द्वैत वा अद्वैतका जो वेदादिशास्त्रोंमें प्रतिपादन है सो विरुद्ध नहीं होसकताहै।

प्र०—क्योंजी जो परमात्मा प्रकृतिसंबद्ध होताहै तो उसके विकारोंसे दूषित व लिप्त क्यों नहीं होताहै ।

उ०—गीता अ० १३—

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते १

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ।२।

अर्थ—अनादि व निर्गुण होने से परमात्मा निर्विकार

व अविनाशी है यद्यपि शरीरान्तर्वर्ती है तथापि न तो वह कुछ करताहै और न शुभाशुभ कर्मोंसे लिप्त होता है ॥ १ ॥ जैसे आकाश सर्वगत है तथापि सूक्ष्म होनेसे लिप्त नहीं होताहै । ऐसे ही परमात्मा देहमें सर्वत्र स्थित है तथापि लिप्त नहीं होताहै ॥ २ ॥

प्र०—अच्छा तो जीवात्मा तो लिप्त होताहै इसीलिये लिखाहै गीतामें अ० १३—

पुरुषःप्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु । १ ।

अर्थ—प्रकृतिसंबद्ध होकर जीवात्मा प्रकृतिके गुण जो सुखदुःखादि हैं उनको भोगताहै और गुणोंके सम्बन्धसे ही अच्छी व बुरी योनियोंमें जन्म पाताहै ॥ १ ॥ यदि जीवात्मा भी अपने को असङ्ग उदासीन निर्लेप अकर्त्ता अभोक्ता समझै और अहं मम यह अभिमान शरीरादिकोंमें न रक्खै और अपने आत्मस्वरूपको जान लेवै तो वह भी निर्लेप होकर मुक्त होजावै । जैसे गीता अ० १४ में लिखा है कि—

मानापमानयोस्तुल्यः समो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते । १ ।
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्ठाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ।२।

अर्थ—जो सुख दुःख वा मान अपमान में अविकृत चित्त

रहताहै और मित्र और शत्रुमें सम भाव रखताहै और किसी प्रकारकी चाहना न रक्खे—और सर्व कर्मोंके आरम्भ वा उद्यम को त्यागे उसे गुणातीत अर्थात् "निर्लेप" कहतेहैं और सदा सन्तुष्ट रहै मिट्टी और काञ्चनको समान समझे प्रिय और अप्रिय जिसके तुल्य हों और स्तुति व निन्दामें समभाव रहै उसे गुणातीत कहेहैं। जीवात्मा तो आत्माभास है कोई वस्तुभूत आत्मा नहीं क्योंकि अविद्यामें जो ब्रह्मका प्रतिबिम्ब है उसे ही जीव कहतेहैं और आत्मा जो बिम्बरूप है सो निर्विकार है। जीव भी अविद्याके नाशके पश्चात् ब्रह्म ही है अन्य नहीं। जो कहो कि निराकारका प्रतिबिम्ब तो होसके नहीं फिरजीव क्योंकर माना गयातो इसका समाधान यह है कि जैसे निराकार आकाशका प्रतिबिम्ब हुआ ऐसे ही ब्रह्मका भी होताहै जैसा कि जलकी तीर पर स्थित मनुष्यको सूर्यका बिम्ब दूर दिखलाई देताहै तब तीरसे लेकर सूर्यके बिम्ब पर्यन्त जो वह पोल है सो आकाश ही है उसका प्रतिबिम्ब तीरस्थ पुरुषको जलमें होकर दीखताहै इससे निराकारका भी प्रतिबिम्ब होताहै यह सिद्ध होगया।

प्र०—कहो जी ब्रह्म तो निराकार और जगत् साकार है फिर निराकारसे साकारकी उत्पत्ति क्योंकर सम्भव होसकती है जैसे बीज साकार है तो उससे साकार वृक्ष होता है और आकाश निराकार है तो उससे उपादानरूपसे कोई साकार पदार्थ बना नहीं दिखाई देताहै इससे निराकारसे साकारकी उत्पत्ति मानना असङ्गत है।

उ०—सब ही साकार पदार्थ निराकार से ही उत्पन्न होते हैं केवल साकार से नहीं, जैसा कि आम्रादि वृक्ष साकार हैं वे उनके बीजोंमें स्थित जो निराकार अङ्कुरोत्पादनकी शक्ति है उसीके बलसे पैदा होतेहैं न कि उस बीजमात्रसे, और वह जो शक्ति है सो न तो आप साकार है और न साकार बीजरूपा है किन्तु बीजसे भिन्न ही है इसीसे वन्हिसे परिपक्व जो चणे आदि हैं उनसे अङ्कुर नहीं उत्पन्न होतेहैं। इस कारण बीजमात्र अङ्कुरोंकी उत्पत्तिमें कारण नहीं होसकते हैं। जो कदाचित् उन बीजों ही को कारण मानों तो उनसे अङ्कुर उत्पन्न होने चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि निराकार से भी साकार की उत्पत्ति होसकतीहै ऐसी दशामें ब्रह्म से जो जगत्की उत्पत्ति है उसमें कोई विवाद नहीं और जन्माद्यस्य यतः। इस ब्रह्मसूत्रके बलसे और यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति इत्यादिक वेदोंके वचनोंसे निराकार ब्रह्मसे साकार जगत्की उत्पत्ति विरुद्ध नहीं होसकती है हम लोग आस्तिक हैं, इस लिये वेदों के वाक्योंको अप्रमाण नहीं मान सकते वेद व शास्त्रों की जो आज्ञा है सो हमारे सर्वथा शिरोधार्य है इसलिये इस में जो आक्षेप करें उन्हें आस्तिक नहीं समझते। अब यह द्वैताऽद्वैतप्रकाश समाप्त हुआ इसका निर्माण पं० विजयचन्द्रशर्मा ने सर्वोपकारार्थ किया है। अलं विस्तरेण—

मि० म० आ० शु० ८ सं० १९६६ का

॥ श्रीः ॥

द्वैताद्वैतप्रकाश

द्वितीयभाग

"समस्त जगत् चेतनब्रह्मरूप है इसकी उपपत्ति"

सर्व जगत्के चेतनब्रह्मरूप होनेमें "पुरुष एवेदं सर्वमित्या-दिक[1]" वेदके और "सदसच्चाहमर्जुन[2]" इत्यादिक वेदान्तशास्त्रके वचनरूप प्रमाणतो बहुतसे हैं परन्तु इसमें कोई युक्तिरूप प्रमाणके विना अन्यमतावलम्बी लोग केवल इन हमारे वेदादिकोंके वचनरूपी प्रमाणोंही से पूर्वोक्तविषयको यथार्थ नहीं मानेंगे प्रत्युत यों कहने लगेंगे कि जैसें तुम्हारे वेदादिशास्त्रोंके वचन जगत् व ब्रह्मकी एकता बताते हैं वैसेही हमारे शास्त्रोंके वचन उनकी सर्वथा भिन्नता बतारहे हैं फिर हम तुम्हारेही इन शास्त्रोंके वचनरूपी प्रमाणोंको विना युक्ति और अनुभवके कैसें यथार्थ मानलें इस कारण इसविषयमें युक्ति व सर्वलोगोंका अनुभवभी प्रमाण बताया जाता है—जिससे अन्यमतावलम्बी लोगभी जो वितण्डावादी नहीं हैं वे हमारे इन शास्त्रीय प्रमाणों

१—यह जो भूत भविष्यत् व वर्त्तमानात्मक सब जगत् है सो पुरुषही है उससे अन्य कुछ नहीं, यह यजुर्वेद का वचन है।

२—भगवान् कृष्णजी कहते हैं कि यह जो कुछ सत् व असत् है सो मैंही हूं—

को यथार्थ मानें—इसमें युक्तिरूप प्रमाण और सर्वलोगोंका अनुभवरूप यह प्रमाण है कि सर्व जगत्‌के पदार्थ ज्ञानकी सत्तासेही सिद्ध होते हैं अन्यथा नहीं। क्योंकि ज्ञानरूपी एक ऐसा सर्वानुभवसिद्ध पदार्थ है कि जिसमें सारा जगत् अन्तर्गत होरहा है। यदि ज्ञानपदार्थ नहो तो जगत् का कोई भी पदार्थ सिद्ध न होवै, ज्ञानके विनातो संसारका यथायोग्य बनना ही असम्भव है यदि ज्ञान न होता तो संसारमें कई पदार्थ व्यर्थभी होते सो नहीं हैं सबके सब जगत्‌के पदार्थ मनुष्यादिकों के हितार्थ बनेहुए हैं। जो वस्तुहै और उसको संसार भरमें यदि कोईभी नहीं जानता हो तो उसको विनाजाने कोई क्या बतलावैगा। जब वह न बताई गई तो उसको कोई भी कुछ पदार्थ नहीं मानैगा। जब न माननेमें आई तो उसके विषयमें कोई व्यवहार न चलैगा। जब व्यवहार न चला तो फिर उसको कौन कहैगा कि यह अमुक पदार्थ है और इसके ये गुण वा लक्षण हैं। ऐसी स्थितिमें वह पदार्थही नहीं माना जायगा क्यों कि लक्षण और प्रमाणोंसे ही वस्तुकी सिद्धि होती है जबतक उसका लक्षण वा प्रमाण न बताया जायगा तबतक उसकी सिद्धि कैसे होगी—अतएव इस विषयमें यह अनुमानभी सङ्गत होता है कि " यदि वस्तु स्यात् तर्हि उपलभ्येत, नोपलभ्यते इति नास्ति—अर्थात् जो वस्तु होती तो अवश्य किसीको तो ज्ञात होती नहीं ज्ञातहोती है इससे वह नहीं है, इस प्रकारके अनुमानसे जो वस्तु ज्ञान सिद्ध नहीं है उसका अभावही समझा जाता है, इससे यही सिद्ध हुआकि जगत्‌के सब पदार्थ ज्ञानकी सत्ताही से सिद्ध होते है, क्यों कि ज्ञान में ज्ञेयके बनालेनेकी शक्ति है और ज्ञेयमें ज्ञानके बनालेनेकी शक्ति नहीं। अतएव स्वप्न समयमें ज्ञान अपने आप उन नवीन

पदार्थोंको बनालेता है जो उस समयमें वहां वर्त्तमान नहीं रहते हैं, जो कहो कि जागृतमें जो पदार्थ वर्त्तमान हैं वेही स्वप्न समय में दिखाई देते हैं और नवीन नहीं, तो मृत स्त्री वा पुरुष क्यों दिखाई देते हैं क्या वे उस समय में वहां वर्त्तमान रहते हैं जो मृत होगये, इससे सिद्धहुआ कि ज्ञानही ज्ञेयको तत्तदाकर बनाकर दिखादेता है। जो कहो कि ज्ञान उनहीं पदार्थोंको फिरभी बनाकर दिखाताहै जो पहले कभी उसके विषय हुए हों अन्यथा नहीं तो अब यह कहो कि संसारकी रचनासे पहले ब्रह्मनें जो ज्ञानरूप है कब इस संसार-को अपना विषय कियाथा जो सृष्टि समयमें बनाकर दिखाया। जो कहो संसार अनादि है तो हम कहेंगे कि संसार सकर्तृक है तो इसके करनेकाभी कोई न कोई एक सर्वाधसमय अवश्य होगा जिससे पहले कभी संसार नहीं बनाथा। अब कहो उस समयमें ज्ञानरूपी ब्रह्मनें विना जगत्को विषय किये कैसे जगत् बनालिया—तो इसका उत्तर यह है कि यह ज्ञानरूपी ब्रह्म नित्य पदार्थ है इसका कभी अभावतो होताही नहीं और जब यह नित्य रहातो इसकी क्रियाभी नित्यही रहैगी क्यों कि क्रियाभी ज्ञानकाही विवर्त्त है अन्य नहीं, इससे संसारभी इसके साथका साथ अनादि रहता है, ब्रह्म इसका केवल स्थूल व सूक्ष्म रूपसे आविर्भाव व तिरोभाव करता है परन्तु सृष्टिके प्रारम्भ समयमें ब्रह्मसे इसका भिन्न व्यवहार नहीं रहता है किन्तु सबका ब्रह्म-रूपसेही व्यवहार रहता है। यह जगत् जो सृष्टि समयमें दिखाई देताहै सो सृष्टिसे पहले ब्रह्मरूपसेही था। इसमें 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" इत्यादिक श्रुतियां प्रमाण हैं, इस कारण सृष्टि समयकी जो जगत्के पदार्थों की रचना है सो

पूर्व सृष्टिके विषय किये जगत्के पदार्थोंकी रचना है तो अब कोई आक्षेपका स्थान नहीं—और जाग्रतमें भी रस्सीमें सर्प वा शुक्तिमें रजत वास्तवमें है नहीं परन्तु ज्ञान दूरत्वादिके होनेसे नवीन सर्पादिक बनाकर दिखा देता है। और जब किसी के नेत्रमें दोष होता है तब उसको एक चन्द्रमाके दो चन्द्रमा दिखाई देते हैं भला क्या चन्द्रमा दोषे जो उसको दो दिखाई दिये इससे भी यह स्पष्ट सिद्ध है कि ज्ञानमें ज्ञेय बना लेनेकी शक्ति है और ज्ञेयमें ज्ञान बना लेनेकी शक्ति नहीं। यदि ऐसा होतो हमको हमारे अज्ञात पदार्थोंका सामने रहनेसे विना किसीके बताए स्वयं यह ज्ञान होजाना चाहिए कि ये अमुक पदार्थ हैं और इनके ये गुण या लक्षण हैं। जो कहो कि ज्ञेयविना ज्ञान किसका होगा इस कारण ज्ञानकी सत्तामें ज्ञेयभी कारण होसकता है। तो सुनों कि उक्त दृष्टान्तोंसे ज्ञान कीही ज्ञेयके निर्माण में सामर्थ्य जान पड़ती है। और ज्ञेयकी ज्ञान-के निर्माण में नहीं। क्यों कि ज्ञान अनादि नित्यपदार्थ है यही सब ज्ञेय पदार्थोंकी जड है और ज्ञेय व्यावहारिक अनित्य कृत्रिम पदार्थ है। यह ज्ञानका निर्मापक[1] नहीं होसक्ता। यह ज्ञान जब ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञानका साधक प्रमाण रूप बनता है तब वह क्रिया अर्थात् कर्म वा माया इस नामसे बोला जाता है, जैसे मृत्तिकाही घटरूप बननेसे घट नामसे बोली जाती है और जैसे घट मृत्तिका का विवर्त्त है इससे रूपान्तर करके प्रतीत होता है। ऐसे ही जगत्के सब पदार्थ ज्ञानके विवर्त्त हैं इससे रूपान्तर करके प्रतीत होते हैं वही ज्ञान विवर्त्त होकर

१—रचनेवाला

इत्यादि नामसे प्रसिद्ध हुआ, उससे अन्य कोई ज्ञेय नहीं, संसारमें तीन प्रकारके पदार्थ माने गये हैं। पारमार्थिक, व्यावहारिक, और प्रातिभासिक, इनमें ज्ञानतो पारमार्थिक पदार्थ है जैसे घटादिकी अपेक्षा मृत्तिका, और घटादिक व्यावहारिक हैं और रज्जुसर्पादिक प्रातिभासिक हैं, ब्रह्मज्ञकी दृष्टिमेंतो घटादिक सब पदार्थ रज्जुसर्पादिकोंके समान सर्वथा मिथ्या व प्रातिभासिकही हैं. अच्छा अब यह विचार किया जाता है कि वह ज्ञानही ब्रह्म है उसीमें यह सारा संसार जगमगारहाहै और उसीमें व्यवहारदृष्टिसे आधाराधेय भावकी कल्पना है, वस्तुतः वह एक रूप है विषयभेदसे भिन्न भिन्न मानागया है, जैसे अनेक जलपात्रोंमें एकही सूर्यके अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं— और व्यवहार दृष्टिसे ही जड़ व चेतनकी कल्पना है, जड़ ज्ञान शून्य और चेतन ज्ञान युक्त, ऐसा भेद माना गया है परन्तु वास्तवमें यह कल्पना मिथ्या है। सारा जगत् चेतन ज्ञान मय है. कहींतो यह ज्ञान उद्भूत है और कहीं अनुद्भूत। पाषाणादिमें अनुद्भूत और मनुष्य पश्वादिमें उद्भूत है। जैसे काष्ठादिकों में तो अग्नि अनुद्भूत है और अन्यत्र उद्भूत। अन्तःकरणके कारण मनुष्यादिकोंमें ज्ञान उद्भूत और अन्यत्र नहीं। इसीसे ऋग्वेदके ब्राह्मणमें लिखाहै कि "प्रज्ञानं ब्रह्म" अर्थात् यह जो नित्य निर्विकल्पक एक ज्ञान है सोही ब्रह्महै। जो सांसारिक पदार्थोंका ज्ञान है सो अविद्या व मायासे कलुषित होनेसे ब्रह्मसे भिन्न मानागया है। जब माया वा अविद्याका नाश हुआ और वह स्वच्छ निर्विकल्पक हुआ तो वही निर्विषयक ज्ञान है सो ब्रह्मरूपहै संसारके पदार्थ मायाके परिणाम होनेसे मिथ्या हैं। माया उस पदार्थका नाम है जो असलमें कुछ होवै नहीं और दिखाई देवै जैसे छाया वा प्रतिबिम्ब अथवा अन्धकार। इसी प्रकार सारा

जगत् अनहुआही दिखाई देता है इसलिये निःसन्देह माया है परन्तु यह माया वा अविद्या ब्रह्मसे भिन्न देखो तो कुछ नहीं यह बात छान्दोग्यश्रुति गत (तत्त्वमसि) इस महा वाक्यसे स्पष्ट ज्ञात होती है इसका यह अर्थ है कि वह ब्रह्म तू है दूसरा तू कुछ नहीं तू जो है सो मूंठा है यह वाक्य आरुणि ऋषि नें अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहा है। संसारमें यह जो तू में यह त्वद व्यवहार है सो सब नाम वा आकारमात्रसे है सो नाम वा आकार मात्र ही जगत् है। यदि नाम वा आकार न हो तो कोई जगत्का व्यवहार नहीं चले। इसकारण अस्ति, भाति, प्रिय, ये तीन अंश तो ब्रह्म हैं और नाम व आकार जगत् है। और अस्ति, भाति, प्रिय, ही का सत[1] चित[2] आनन्द[3]रूपसे व्यवहार है। अर्थात् नित्यज्ञान व आनन्द है सो ही ब्रह्म है उसीके ज्ञानसे मुक्ति होती है इसीसे वेद कहता है कि "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यःपन्था विद्यतेऽयनाय" उस ब्रह्मके ही ज्ञानसे मोक्ष मिलती है इससे अन्य मोक्षका कोई उपाय नहीं। इससे मोक्षार्थी अवश्य आत्मज्ञान सम्पादन करे। ब्रह्म वाचक जो ज्ञानशब्द है उसका अर्थ यह है कि "ज्ञायते सर्वं दृश्यादृश्यात्मकं जगत् यस्मिंस्तज्ज्ञानम्" जाना जाता है सब दृश्य व अदृश्य रूप जगत् जिसमें सो ज्ञान ब्रह्म है। यहां अधिकरण अर्थमें "करणाधिकरणयोश्च" इस सूत्रसे ल्युट् प्रत्यय जानना। "ज्ञानज्ञेययोर्ज्ञानमेवप्रधानं तदुत्पादकत्वात्, यद्यपि सूक्ष्म रूपेण ज्ञेयमपि ज्ञानान्तर्गतत्वात् तत्सहचार्येव, तथापि ज्ञानं ज्ञेयोद्भावकमिति ज्ञानस्यैव प्राधान्यम्" यद्यपि ज्ञान और ज्ञेय ये दो पदार्थ जगतमें अनादि सिद्ध हैं क्यों कि ज्ञान विना ज्ञेयमें ज्ञेयत्व असम्भव और ज्ञेयविना ज्ञानमें ज्ञानत्व। तथापि ज्ञानही

---

१ नित्य २ ज्ञान ३ सुख

प्रधान और सर्वज्ञेयोंकी अपेक्षासे आदि है। क्यों कि ये दोनों वास्तवमें ब्रह्म और माया रूप हैं। ज्ञानतो ब्रह्म रूप है, और ज्ञेय माया रूप है अत एव वेद वा शास्त्रोंमें ज्ञानको ब्रह्म रूप बताया है जैसा कि ऋग्वेदमें "प्रज्ञानं ब्रह्म" किं प्रज्ञानम्-इति चेत्

येनेक्षते शृणोतीदं जिघ्रति व्याकरोति च।
स्वाद्वस्वादु विजानाति तत्प्रज्ञानमुदीरितम् ॥ १ ॥
चतुर्मुखेन्द्रदेवेषु मनुष्याश्व गवादिषु।
चैतन्यमेकं ब्रह्मातस्तत्प्रज्ञानमुदीरितम् ॥ २ ॥
परिपूर्णः परात्माऽस्मिन् देहे विद्याधिकारिणि।
बुद्धेः साक्षितया स्थित्वा स्फुरन्नहमितीर्यते ॥ ३ ॥

"प्रज्ञानब्रह्म" ऐसा कहा है अब जो कहोकि वह प्रज्ञान क्या है तो सुनो-प्रज्ञान वह पदार्थ है कि यह (जीवात्मा) चक्षुके द्वारा निर्गत जो अन्तःकरणकी वृत्ति तिस करिकैं उपहित जिसचैतन्यसे इस जगत्के पदार्थोंको देखता है, सुनता है, सूंघता है और बतलाता है और स्वादु वा अस्वादु पदार्थोंको जानता है सो प्रज्ञान अर्थात् एक विलक्षण नित्यज्ञान है वह ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्य्यन्त जितने जीव हैं उन सबमें एक सा अद्वितीय चैतन्य नाना प्रकारकी विद्याओंकी प्राप्तिके योग्य जो यह देह तिसमें अखण्ड सच्चिदानन्द रूप से बुद्धिकी साक्षिताकरिकैं स्थित होकर प्रत्यक्ष अहं इस पदसे कहा जाता है वह स्वतः पूर्ण परमात्मा ब्रह्म है-और माया जो ब्रह्मकी एक इच्छा शक्ति है उसीका नाम है वह जीवात्माके अन्तःकरणमें अज्ञानकी जवनिका (पड़दा) रूप है जो ब्रह्मके स्वरूपको नहीं जानने देती है और वेदागुपदेशद्वारा ब्रह्मसाक्षात्कारसे

वह जवनिका उठती है—अन्यथा नहीं यही ज्ञेय रूप बन कर संसारको बनाती है फिर अन्तमें ब्रह्महीमें लीन हो जाती है इस कारण प्रधान ज्ञान रूपी ब्रह्मही है ज्ञेय नहीं अर्थात् ज्ञा- नही ज्ञेयको बनाता है इससे ज्ञेय मात्र ज्ञानहीकी सत्तासे सिद्ध होता है और ज्ञान तत्सत्ता सिद्ध नहीं। इति शम्।

* श्रीसरस्वत्यष्टकम् *

नमस्ते दयापूर्णदृक्शोभितास्ये, नमस्ते स्वभक्तौघदत्ताभि- लाष्ये। नमस्तेऽम्ब वाग्देवि वीणाविलास्ये, मयि त्वं प्रसीद स्थिते तेऽत्र दास्ये ॥ १ ॥ नमस्ते सुविद्याभिलापिरूपास्ये, नमस्ते सुवि- द्यानिधीशत्वदास्ये। नमस्ते शरत्पूर्णचन्द्रप्रभास्ये, नमस्तेऽब्जक- च्छोभि सन्मन्दहास्ये ॥ २ ॥ अनाद्यन्तरूपप्रकाशप्रकाश्ये, समस्तं जगत् त्वत्सुदास्येऽविनाश्ये। कृपाङ्कुर्वदं सद्गुणास्ति- भिधास्ये, नमो ब्रह्मचिच्छक्तिरूपेण भास्ये ॥ ३ ॥ नमस्ते घृत- श्वेतवस्त्रोच्चकास्ये, नमस्ते स्वलङ्काररराशिप्रकाश्ये। स्वपाणिस्थ- मालावराऽभीतिभास्ये,ऽन्यहस्तस्थिते पुस्तके योजितास्ये ॥ ४ ॥ नमस्ते सिताम्भोजदिव्याऽधिवास्ये, नमस्ते सदा सर्ववेदादिभाष्ये। नमस्तेऽविनाशिस्वरूपातिभास्ये, नमस्ते सदा विज्ञजिह्वानिवास्ये ॥ ५ ॥ विधाता व्यधाद्विश्वमेतत् सुदास्ये, स्थितोऽभूद्य- दाते समस्तं सुलास्ये। तथैतत्सुरक्षाविधौ ते सुदास्ये, स्थितो मा- धवो देवि सर्वप्रकाश्ये ॥ ६ ॥ विनाशेऽस्य देवो महेशोपि दा- स्ये, स्थितस्ते सदा सर्वलोकप्रकाश्ये। महैश्वर्ययित्वत्पदाब्जो निवास्ये, मयि त्वं प्रसीद स्थिते तेम्ब दास्ये ॥ ७ ॥ जयोहं त्विपूर्वोष्टकं ते प्रदास्ये, मणीपार्पपाणिप्रभापुञ्जभास्ये। नमस्तेऽ म्ब वाग्देवि वीणाविलास्ये मयि त्वं प्रसीद स्थिते तेऽत्र दास्ये ॥ ८ ॥ इति शम्।

॥ श्रीः ॥

❀ अथ सदाचाररत्नमाला ❀

सत्य बोलना सर्वदा रहना शुद्ध सदैव ।
बिना प्रयोजन अधिक जो भाषण वहै वृथैव ॥ १ ॥
व्यर्थ न करनी नष्टमति करिकैं कुत्सित कर्म ।
रहना दूर कुसंगतें सुकृत जानि निज धर्म ॥ २ ॥
मन प्रसन्न रखना सदा धरना जिय सन्तोष ।
करना शुभ उद्योग अरु सुभग नीतिका पोष ॥ ३ ॥
परसम्पति अति देखिकें जलना नांहि कदापि ।
परतिय त्यागो भगवतको करो जाप मन थापि ॥ ४ ॥
साधु सन्त अरु महतजन पंडित सुजनहु सेइ ।
भगवतगुण अनुवाद नित सुनिकें निज चित देइ ॥ ५ ॥
करो अनादर कबहु नहिं वृद्धनको जग मांहि ।
अपने धर्म रु कर्ममें राखो चित्त सदांहि ॥ ६ ॥
सतसङ्गति करिये सदा चित धरिये श्रुति ज्ञान ।
ज्ञानी अरु गुरु सुजनका मानों वचन प्रमान ॥ ७ ॥
अनुचित करिये नां कभी कोई कार्य मन चाय ।
शीघ्र करै नर मोक्षका जतन सुअवसर जाय ॥ ८ ॥
समझो धर्महिं निज हितू रखहु चित्तकी शुद्धि ।
निज विद्याकी वृद्धि अति करो प्रबल निज बुद्धि ॥ ९ ॥
पर उपकारी तत्त्ववित ज्ञानीका नर जन्म ।
जानहु सफल हि जगतमें सज्जन जो सुख सद्म ॥ १० ॥
अतिस्नेह उन्मादकर जिमि मदिराको पान ।
शब्द आदि पांचों विषय अतिके अति दुख दान ॥ ११ ॥

इनमें अति आसक्ति तजि तृष्णा तजि जग बेल ।
अनुयोगको समझिये निज वैरी तजि खेल ॥ १२ ॥
मौत वही जातें नहीं होवै पीछे मोत ।
जन्महु सोही सुभग जग पुनि पीछे ना होत ॥ १३ ॥
लघुताकी जड़ जाचना समझो यह दृढ बात ।
बलिपै जाचत ही भये ईशहु वामन गात ॥ १४ ॥
यौवन धन अरु आयु हू चंचल जग विख्यात ।
इनको गर्व न कीजिये छिपै सुजनता जात ॥ १५ ॥
अभिमानहु कों मानिये जड़ अनर्थ की तात ।
आलसकों जानों सदा प्रबल शत्रुकृत घात ॥ १६ ॥
सदुपदेश देकरि करो सदा पराया हित्त ।
यही सार संसारमें सच्चा जानों मित्त ॥ १७ ॥
काम क्रोध मद लोभ ये अतिके अति दुखदान ।
यातें इनमें मत करो अति आसक्ति सुज्ञान ॥ १८ ॥
पहिचानों निजरूपकों को तुम जग यह कौन ।
अवसर बीता जात है यामें धरो न मौन ॥ १९ ॥
मनुजजन्म अति कठिन है यातें करो विचार ।
अपने २ हितको जातें हो उद्धार ॥ २० ॥
ज्ञान भक्ति इन दोयमें जो चाहो चित धारि ।
दृढता धरि नर जन्म कों अपनो लेहु सुधारि ॥ २१ ॥
सदाचार शुभरत्नमय माला विजै बनाइ ।
याकों जो निजचित धरै मनुज जन्म सफलाइ ॥ २२ ॥

समाप्तेयं सदाचाररत्नमाला सं० १९६५ भा० शु० ८ शुभं भवतु । श्रीरस्तु । ओ: ।

॥ श्रीः ॥

॥ अथ ॥

प्रश्नोत्तररत्नमाला

(ओ ३ म्)

सर्वाधार अपार गति निराकार साकार ।
निराधार अरु एकहू, लसे अनेक प्रकार ॥ १ ॥
सत चित आनँद रूप अरु जग जनि लय थिति हेत ।
विजयत सो अतिप्रबल प्रभु भवसागरकी सेत ॥ २ ॥

कहा ग्राह्य गुरु वचन अरु कहा त्याज्य अपकर्म्म ।
कौन गुरू जो तत्त्ववित जगहित जासु स्वधर्म्म ॥ ३ ॥
शीघ्र कहा करना उचित मोक्षप्रद शुभ कर्म्म ।
कहा मोक्षतरु बीज है सम्यग् ज्ञान सुधर्म्म ॥ ४ ॥
मदिरा ज्यों मोहै कहा स्नेह सुतादिक जन्य ।
कौन चोर मनकों हरै विषय पांच नहि अन्य ॥ ५ ॥
बेल कहा संसारकी तृष्णा वैरी कौन ।
अनुयोग किससे डरै मरनेसे नर जौन ॥ ६ ॥
अन्धेसे हू अधिक को अन्धो रागी जौन ।
कौन शूर जो तरुण तिय दृगशर बिंधै न तौन ॥ ७ ॥
कर्ण अंजलिनतें कहा पीजे शुभ उपदेश ।
अमृत ज्यों या जगनमें जो सुख देत हमेश ॥ ८ ॥
महतपनेकी जड़ कहा परतें जाचन त्याग ।
लघुताकी जड़ जाचना यातें दूरहि भाग ॥ ९ ॥
गहन कहा स्त्रीचरित है चतुर कौन जग भौन ।
जो जन स्त्रीके चरिततें खंडित हो नहि तौन ॥ १० ॥
क्या दारिद है जगतमें असन्तोष दुख दैन ।
कहा तुच्छता जाचना दुःखदाइ दिन रैन ॥ ११ ॥
जीवन कैसा सुभग जग अपजस दोष विहीन ।
कहा मूर्खता सुमति हो विद्याभ्यास न कीन ॥ १२ ॥
कौन जागता है जगत जन विवेकयुत जोहि ।
क्या निद्रा है मूढता चंचल कहु को होहि ॥ १३ ॥
धन जोवन अरु आयु हैं शशिकर सम शुचि कौन ।
सज्जन अरु कहु नरक क्या परवशता ही जौन ॥ १४ ॥

पथा मुख्य सबमें निरानि दी क्या करनों जग मांहि ।
सबको हित करनों सदा मित्र क्या माण कहांहि ॥ १५ ॥
कहा दान त्यागहि अहै आकांक्षाका जोहि ।
मित्र कौन जो पापसे करै निवृत्ताहि सोहि ॥ १६ ॥
भूषण जनको है कहा शील वचनको सत्य ।
कहिये किससे होतहै जगमें बहुत अकृत्य ॥ १७ ॥
अभिमानि से शुभ संगती कहा सुखप्रद जोहि ।
मैत्री व्यसनविनाशिनी का विरक्ति अति सोहि ॥ १८ ॥
अन्ध कौन जो करत है बिना विचारें काम ।
बधिर वही जो सुनत नहिं वचन स्वहित अभिराम ॥ १९ ॥
कौन मूक जो समय पै कहि न सकै हित बात ।
मरण कौनसी वस्तु है महामूर्खता तात ॥ २० ॥
कहा अमोलिक जगत में जो अवसर पै दान ।
मरनें तक साले कहा गुप्त पाप मन मान ॥ २१ ॥
कहेंमें करनों जतन विद्या शिक्षा मांहि ।
अरु शुभ औषध दानमें कबहू नटनों नांहिं ॥ २२ ॥
कहा उपेक्षा योग्य है खल परतिय परद्रव्य ।
कहा ध्येय निशि दिन अहै ईश्वरगुणगण भव्य ॥ २३ ॥
ध्येय और हू दूसरी जग असारता जोहि ।
स्त्री धन पुत्रादिक सकल ममताबन्धन होहि ॥ २४ ॥
कहा प्रिया करतव्य अति दया दीन हित जोहि ।
सज्जन सँग मैत्री कहो कौन न वशमें होहि ॥ २५ ॥
अभिमानी रु कृतघ्न अति हठी मूर्ख जो होहि ।
मरने तक हू होय नहिं ताही को मन सोहि ॥ २६ ॥
कौन पूजने योग्य है सदाचारयुत जोहि ।

कौन अधम जग मांहि है अनाचारयुत सोहि ॥ २७ ॥
किसनें जीता जगत सब सहनशील नर जोहि ।
कहां वास करनां उचित सुजन समीपहि सोहि ॥२८॥
अथवा काशीके विषैं कौन नमस्करणीय ।
देव रु दया प्रधान हीं अथ जग वनस्मरणीय ॥ २९ ॥
किसके वश सब जग रहै जो प्रिय वचन सुज्ञान ।
सत्यवादि जो मनुज है ताके वश जग जान ॥ ३० ॥
कहां अचल रह सुमति नर न्याय मार्गमें सोहि ।
यहँके अरु परलोकके लाभ लहन जग जोहि ॥ ३१ ॥
विजली ज्यों चल कौन है दुष्प्रीति अरु तीय ।
अचल कौन कुलशीलमें कलि सज्जन कमनीय ॥ ३२ ॥
कहा शोच्य वैभव छतें मूंजीपन जो होहि ॥
कहा प्रशंसायोग्य तव दातारी अति सोहि ॥ ३३ ॥
निर्बल अरु बलवानका कहा प्रशंसित कर्म ।
सहना गपसप जो करै निंबल सवल गुनिधर्म ॥ ३४ ॥
चिन्तामणिके सदृशं क्या दुर्लभ है जग मांहि ।
च्यार बात ये सुभग जो हम आगें दरसांहि ॥ ३५ ॥
दान मान अरु प्रेमतें ज्ञान मानतें हीन ।
क्षमासहित अतिशूरता दान भोग धन लीन ॥ ३६ ॥
विजय विनिर्मित पद्य ये भाषा मांहि रसाल ।
सब साधारण सुजन हित प्रश्नोत्तर मणिमाल ॥ ३७ ॥
संवत उन्नीसे तथा पैंसठ भादों मास।
कीन्हीं निर्मित विजयनें भाषानीतिप्रकास ॥ ३८ ॥

इति प्रश्नोत्तररत्नमाला समाप्ता ।

॥ दोहा ॥

स्वर्गत श्रीजिनमुक्तिसुन सूरि नाम यति म्हंत ।
कीरितज्यों निज कीर्तिनें राजें जगत सुमन्त ॥ १ ॥
तिनके हैं ये शिष्य जे श्रीजिनचन्द्र यतीन्द्र ।
गति गणपथि इमि लसत हैं जिमि उडुगण रजनीन्द्र ॥२॥
जङ्गम युगमें मुख्य ये खरतर गच्छ महान ।
भट्टारक श्रीपृज्यवर विद्यायुत मतिमान ॥ ३ ॥
सर्व सुविद्या रसिक अरु गुन गाहक श्रीमान ।
छपवाई इन नें यहै पुस्तक उपकृति जान ॥ ४ ॥

(कवित्त)

श्रीयुत श्रीमान श्रीसंघतें सुपूजित पद,
शोभित सरोजसम सर्व गुन गनैया हैं ।
कहै कन्दिराम कर्म काटत करवाल सम,
करुणा निधान महिपालन मनैया हैं ॥
जङ्गम जुग जल्पत जाहिर जहान जस,
जयति जयनेन्दु जैन धर्म के जनैया हैं ।
चक चकात चहूं दिस चन्दवत चन्द सूरि,
गच्छ गननायक हमारे तो कन्हैयाहैं ॥

(रामदयाल कवि)

مختصر فہرست تصنیفات حضرت خواجہ حسن نظامی صاحب دہلوی

نام کتاب	قیمت	نام کتاب	قیمت
سفرنامہ مصر شام و حجاز۔ بالتصویر	سے ر	ظہور مہدی	۵ ر
سی پارۂ دل یعنی مجموعہ مضامین خواجہ حسن نظامی	عہ ر	تین پر ایک	۶ ر
محرم نامہ	عہ ر	ناگفتہ بہ	۵ ر
میلاد نامہ	عہ ر	سفرنامہ ہندوستان	۸ ر
بیوی کی تعلیم	۱۲ ر	عیدی	۲ ر
چٹکیاں اور گدگدیاں	۸ ر	توپ خانہ	۱ ر
غدر دہلی کے افسانے	۶ ر	قیصر کا اعلان جنگ	۱ ر
اردو دعائیں	۶ ر	مکھی کا میدان جنگ	۱ ر
تسخیر مہر و قہر	۸ ر	بندوق	۰ ر
جگ بیتی	۶ ر	بم	۰ ر
بچوں کی کہانیاں	۶ ر	ہوائی جہاز	۰ ر
قبروں کے غیبی نوشتے	۸ ر	جرمن شہزادے کی لاش	۰ ر
کم ڈھوت	عہ ر	فرام قبلہ ٹو قبلہ	۰ ر
انتخاب توحید	عہ ر	خدائی الکم بکس	۱ ر
اسرار	سہ ر	مجموعہ خطوط	۱۲ ر
اسلام کا انجام	سہ ر	اتالیق خطوط نویسی ہر دو حصہ	۱۰ ر

یہ سب کتابیں

پیرزادہ سید محمد صادق کارکن حلقۃ المشائخ دہلی سے منگائیے